संपादकीय

सतर्कता से हो अनलॉक

पहली लहर के खात्मे और टीकाकरण अभियान की शुरुआत के बाद सार्वजनिक जीवन में नागरिकों के स्तर पर और भविष्य की तैयारी को लेकर सरकारों के स्तर पर जो चूक हुई, उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जानी चाहिए। भले ही देश में कोरोना संक्रमण का आंकड़ा एक लाख से कम हो गया है, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि यह आंकड़ा बीते सितंबर में पहली लहर के शिखर के आसपास ही है। ऐसे में हमें पिछली चूक को दोहराने से बचने की जरूरत है। हमने बीते अप्रैल-मई में व्यवस्था की विसंगतियों तथा सामाजिक स्तर पर लापरवाही का खमियाजा भुगता है। ऐसे में जब कोरोना से सबसे ज्यादा प्रभावित महाराष्ट्र और दिल्ली समेत कई राज्यों में अनलॉकिंग की प्रक्रिया शुरू हुई है तो हमें बुरे अनुभवों के सबक जरूर सीखने चाहिए। यह समझते-बूझते हुए कि देश में कोरोना संकट अभी टला नहीं है। कोरोना की लड़ाई में विशेषज्ञ राय देने वाले एम्स दिल्ली के निदेशक डॉ. रणदीप गुलेरिया और नीति आयोग के सदस्य वी.के. पॉल कह रहे कि भविष्य में आने वाली संक्रमण की लहर की आशंकाओं को दूर करने में कोविड-रोधी व्यवहार की बड़ी भूमिका रहेगी। वही बातें जो पिछले सवा साल से दोहरायी जा रही हैं कि ठीक से मास्क पहनें, शारीरिक दूरी और भीड़ से बचाव। ये सावधानी कुछ समय और हमें अपनानी होगी, जब तक कि लक्षित आबादी का टीकाकरण नहीं हो जाता। अच्छा होगा जहां एक नागरिक के रूप में हमारी सजगता बनी रहे, वहीं सरकार के स्तर पर भविष्य में किसी चुनौती के मद्देनजर स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार व सुधार को प्राथमिकता बनाया जाये। साथ ही परीक्षण व टीकाकरण को तेजी प्रदान की जाये। कोशिश हो कि सार्वजनिक स्थलों पर एंटीजन टेस्ट की सुविधा सरलता से उपलब्ध हो सके। इससे हम कोविड-पॉजिटिव लोगों को समय रहते अलग करके संक्रमण के जोखिम को कम कर सकते हैं। साथ ही बेहद सावधानी से राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक आयोजनों को अनुमति देनी होगी, ताकि वे सुपर स्प्रेडर्स की भूमिका न निभा सकें। नि:संदेह, एक साल से अधिक समय से हम सामान्य जीवन नहीं जी पाये हैं। अर्थव्यवस्था पटरी से उतरी है। करोड़ों लोगों के रोजगार पर संकट मंडराया है। ऐसे में हमारा सामाजिक व्यवहार जीवन को सामान्य बनाने के लिये जिम्मेदारी वाला होना चाहिए। हमें खुद ही बड़ी भीड़-भाड़ वाले मॉल व बाजारों में जाने में सतर्कता बरतनी होगी। हमें इन्हीं परिस्थितियों में जीवन को सामान्य बनाने की कोशिश करनी होगी। यह अच्छी बात है कि हम सीमित संसाधनों के बावजूद कोरोना की दूसरी लहर से उबर रहे हैं। याद रहे कि दुनिया की एक नंबर की महाशक्ति तमाम संसाधनों व आधुनिक चिकित्सा सुविधा के बावजूद कोरोना संक्रमण और मौतों के मामले में हम से आगे है। सरकारों का दायित्व तो पहले है ही, एक नागरिक के रूप में हमारा व्यवहार भी जिम्मेदारी वाला होना चाहिए। अनलॉक की प्रक्रिया में जैसी भीड़ बाजारों में उमड़ रही है और लोग जिस तरह सावधानी में चूक रहे हैं, वह चिंता बढ़ाने वाली है। नि:संदेह लंबे अर्से से जीवन में घुटन है, आर्थिक चिंताएं हैं, लेकिन थोड़ा और धैर्य भी जरूरी है। दिल्ली में बाजारों और शॉपिंग मॉल्स को ऑड-ईवन आधार पर खोलने की इजाजत सार्थक कदम है। मेट्रो का पचास फीसदी क्षमता के साथ खुलना भी अच्छा है। कोरोना संकट की सबसे बड़ी मार झेलने वाले महाराष्ट्र में कोरोना संक्रमण की स्थिति को पांच स्तर पर बांटना सार्थक पहल है। पहले वर्ग में कम संक्रमण के आधार पर सबसे ज्यादा व लेबल पांच के आधार पर सबसे कम छूट दी गई है। लंबे समय से घरों में बंद और रोजगार संकट से जूझ रहे लोगों के लिये यह राहतकारी जरूर है, मगर सावधानी फिर भी जरूरी है। ऐसे में जब दूसरी लहर पूरी तरह खत्म नहीं हुई है और विशेषज्ञ तीसरी लहर की आशंका जता रहे हैं, अतिरिक्त सावधानी में ही भलाई है। हमारा आगे का जीवन जल्दी से जल्दी सामान्य होना, हमारी सावधानी तथा इस दौरान हम टीकाकरण के लक्ष्य कितनी तेजी से हासिल करते हैं, पर ही निर्भर करेगा।

जितिन प्रसाद भाजपा में: कांग्रेस के लिए एक और संदेश

दृष्टिकोण

नीरजा चौधरी

जितिन प्रसाद की भाजपा के साथ जो सहमति बनी होगी, उसके तहत वह अगले साल उत्तर प्रदेश विधानसभा का चुनाव लड़ सकते हैं। कांग्रेस से चुनाव हारने वाले जितिन प्रसाद, संभव है, भाजपा की सांगठनिक ताकत के बल पर चुनाव जीत जाएं। अगर वह नहीं जीत पाते, तो भी उन्होंने अनुमान लगाया होगा कि कांग्रेस में राजनीतिक रूप से विलुप्त होने की तुलना में भाजपा में अनिश्चित भविष्य का जोखिम कहीं बेहतर है। उनके बाहर निकलने से यह भी पता चलता है कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस आगे नहीं बढ़ रही।

जितिन प्रसाद इसका इंतजार ही कर रहे थे। वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव से पहले ही वह कांग्रेस छोड़ने वाले थे। लेकिन प्रियंका गांधी वाड्रा ने तब उन्हें मना लिया था। भाजपा में उनका आना पार्टी का मनोबल बढ़ाने वाला है। जितिन प्रसाद के आने से उत्तर प्रदेश में भाजपा की संभावनाएं मजबूत होंगी या ठाकुर वर्चस्व वाली योगी सरकार से परेशान ब्राह्मण अब बड़ी संख्या में भाजपा को वोट देंगे, यह एक अलग मामला है। पर इस घटना से भाजपा को मनोवैज्ञानिक लाभ मिला है। जितिन प्रसाद कांग्रेस से ऐसे समय निकले हैं, जब भाजपा पश्चिम बंगाल में हार से बौखलाई हुई है। जो लोग तृणमूल कांग्रेस से भाजपा में शामिल हुए थे, वे तृणमूल में वापस लौट रहे हैं। इन पंक्तियों के लिखे जाने के समय मुकुल राय को लेकर अटकलें लगाई जा रही हैं। कहा जा रहा है कि वह घर वापसी कर सकते हैं।

योगी आदित्यनाथ ने जितिन प्रसाद के आने का स्वागत किया है। एके शर्मा के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले वह एक और ब्राह्मण चेहरा होंगे। नौकरशाह से राजनेता बने और उत्तर प्रदेश भेजे गए शर्मा प्रधानमंत्री के भरोसेमंद हैं और योगी सरकार में उनके महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की उम्मीद है। उन्हें विधान परिषद का सदस्य बनाया गया है और जो प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र वाराणसी के मामलों की देखरेख कर रहे हैं। एक समय अटकलें थीं कि शर्मा को उप-मुख्यमंत्री बनाया जा सकता है और गृह मंत्रालय की जिम्मेदारी दी जा सकती है। पर लगता है कि मुख्यमंत्री योगी ने इस पर रोक लगा दी है। लखनऊ में फिलहाल मंत्रिमंडल में फेरबदल की संभावना नहीं दिख रही। भाजपा नेतृत्व ने भी प्रदेश में नेतृत्व में बदलाव की संभावना से इन्कार किया है। लेकिन मुख्यमंत्री निशाने पर तो हैं ही। जितिन प्रसाद ऐसे समय भाजपा में शामिल हुए हैं, जब योगी की स्थिति मजबूत नहीं है। समय पर टीकों का ऑर्डर न देने से बड़ी चूक हुई है। उत्तर प्रदेश में दूसरी लहर को ठीक से न संभाल पाने की व्यापक आलोचना हुई है और पार्टी के लोगों ने भाजपा की छवि को हुए नुकसान पर नाराजगी जताई है।

कांग्रेस का निरंतर पतन कोई रहस्य नहीं है। जिन पुराने नेताओं का तीन, चार या पांच साल का राजनीतिक जीवन शेष है, वे वहीं टिके रहेंगे। उनमें से कुछ तो राज्यसभा की सीट भी पाने में कामयाब हो जाएंगे। लेकिन जिन युवा नेताओं के सामने बीस-तीस साल का राजनीतिक करिअर है, वे मान रहे हैं कि कांग्रेस में कोई भविष्य नहीं है। इससे पता चलता है कि जितिन प्रसाद और उन जैसे लोग आज किस हद तक निराशा महसूस कर सकते हैं। ऐसा नहीं है कि कांग्रेस छोड़ भाजपा में जाने वाले सभी कांग्रेसियों (हेमंत विस्व सरमा को छोड़कर, जिन्हें असम का ताज मिला) को मनचाही चीज मिल जाती हैं। पंद्रह महीने पहले भाजपा में शामिल होने वाले ज्योतिरादित्य सिंधिया को अब तक मंत्रिमंडल में जगह नहीं मिली है, जिसकी वह उम्मीद कर रहे थे।

जितिन प्रसाद की भाजपा के साथ जो सहमति बनी होगी, उसके तहत वह अगले साल उत्तर प्रदेश विधानसभा का चुनाव लड़ सकते हैं। कांग्रेस से चुनाव हारने वाले जितिन प्रसाद, संभव है, भाजपा की सांगठनिक ताकत के बल पर चुनाव जीत जाएं। अगर वह नहीं जीत पाते, तो भी उन्होंने अनुमान लगाया होगा कि कांग्रेस में राजनीतिक रूप से विलुप्त होने की तुलना में भाजपा में अनिश्चित भविष्य का जोखिम कहीं बेहतर है। उनके बाहर निकलने से यह भी पता चलता है कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस आगे नहीं बढ़ रही।

उत्तर प्रदेश का चुनाव संभवत: चतुष्कोणीय मुकाबला होगा। महाराष्ट्र, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल जैसे बड़े राज्यों में भाजपा सत्ता में नहीं है। अगर वह उत्तर प्रदेश में हारती है, और अगर इसमें राजस्थान, छत्तीसगढ़ और केरल को भी जोड़ लें, तो 250 से अधिक लोकसभा सीटों वाले राज्यों में वह सत्ता से बाहर हो जाएगी। इसी कारण वह उत्तर प्रदेश को हाथ से जाने नहीं देना चाहेगी। मायावती के अकेले चुनाव लड़ने की संभावना है और भाजपा की सीटें कम हुईं, तो बाद में वह भाजपा का समर्थन करने पर विचार कर सकती हैं। सपा और रालोद के बीच पहले ही समझौता हो चुका है और वे कुछ छोटी पार्टियों को साथ ले सकते हैं। लेकिन अखिलेश यादव 2017 की तरह कांग्रेस के साथ गठजोड़ करने के मूड में नहीं दिख रहे। वह हिसाब लगाएंगे कि मुस्लिम मतदाता बंटने के बजाय भाजपा को मुख्य चुनौती देने वाली पार्टी के रूप में उनकी तरफ आकर्षित होंगे, जैसा कि पश्चिम बंगाल में तृणमूल के साथ हुआ। सपा ने हाल के पंचायत चुनाव में अच्छा प्रदर्शन किया है।

जितिन प्रसाद का जाना कांग्रेस की अपनी सोच के बारे में भी बताता है, जिससे युवा नेता बाहर जा रहे हैं। दरअसल कांग्रेस यह मान चुकी है कि वह भाजपा की गैरमौजूदगी में ही सत्ता में लौट सकती है। यह तभी होगा, जब लोग वास्तव में भाजपा से नाराज होंगे। आज ऐसे अनेक लोग मिलेंगे, जो भाजपा से नाखुश हैं, लेकिन वे कहते हैं, कांग्रेस में कोई और चेहरा क्यों नहीं हो सकता लेकिन ऐसा होने की संभावना नहीं है। जितिन प्रसाद के निकलने पर कुछ कांग्रेसियों ने कूड़ेदान में फेंके गए कचरे या अवसरवादी जैसी प्रतिक्रिया जताई।

यानी ऐसी सोच बना ली गई है कि जो पार्टी छोड़ना चाहता है, वह छोड़ सकता है। केवल वही रह सकते हैं, जो राहुल गांधी का नेतृत्व स्वीकार करेंगे। सचिन पायलट ने अब तक पार्टी नहीं छोड़ी है। राजस्थान में पार्टी को पुनर्जीवित करने के लिए उन्होंने पांच साल बहुत मेहनत की और उनसे कुछ वादे किए गए थे, जिनका सम्मान नहीं किया गया। उन्हें पार्टी से जितना मिला, उससे ज्यादा उन्होंने पार्टी को दिया। अगर पार्टी का संदेश वादों को पूरा करने के लिए अनिश्चित काल तक इंतजार करने का है, तो कौन-सा युवा कड़ी मेहनत करना चाहेगा जितिन प्रसाद ने बेशक हरा चरागाह चुना। पर कांग्रेस को जितिन के बाहर निकलने का असल संदेश नहीं भूलना चाहिए कि अनेक युवा नेता आज कांग्रेस में भविष्य नहीं देख रहे। और यह कि उनकी आखिरी उम्मीदें, जो उन्होंने पार्टी में सुधार के लिए बांधी थीं, अब धूमिल हो रही हैं।

प्रामाणिकता पर खरी उतरी दवा ही स्वीकार्य

विश्लेषण

दिनेश सी. शर्मा

कोविड महामारी ने आधुनिक चिकित्सा पद्धति और परंपरागत इलाज के तौर-तरीकों के बीच विवाद को गहरा दिया है। हाल ही में इंडियन मेडिकल एसोसिएशन और पतंजलि आयुर्वेद के संस्थापक रामदेव के बीच हुए वाक्युद्ध ने जनता के बीच भी बहस को काफी हवा दे डाली। रामदेव की दलील थी कि आधुनिक मेडिकल पद्धति के पास न तो कोविड-19 का इलाज करने को कोई दवा है, न ही वह मौजूदा वैक्सीन संक्रमण को पूरी तरह रोकने में समर्थ है। उन्होंने आधुनिक पद्धति को लोगों को लूटने में दवा कंपनियों और अस्पतालों के बीच गठजोड़ बताया। अपने पलटवार में आईएमए ने रामदेव पर 'छद्म-विज्ञान' को बढ़ावा देने और वैक्सीन के प्रति लोगों में जान-बूझकर हिचक बनाने का दोष मढ़ा। ऐसा लगा मानो यह लड़ाई एलोपैथी बनाम आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के नफा-नुकसान गिनाने की हो। किसी एक इलाज पद्धति को अन्यों से सिरमौर बताने पर जोर देना बनावटी और भ्रामक है। इसकी बजाय सारा ध्यान किसी दवा को प्रामाणिक सबूतों के आधार पर स्वीकार्य सोपानों पर खरा बनाने पर केंद्रित होना चाहिए।

दुनियाभर के तमाम समाजों में बहुत पहले से मानव जाति को दरपेश बीमारियों का इलाज प्राकृतिक उत्पादों से होता आया है। आधुनिक दवाओं की आमद तो हाल ही में हुई है। वे दवाएं जिन्होंने इलाज का पूरा चेहरा-मोहरा बदल डाला था, उनका आरंभ पिछली सदी में प्राकृतिक स्रोतों से ही हुआ था। सनद रहे कि किसी दवा को मेडिकल पद्धति में शामिल किए जाने से पहले कई चरणों से गुजरना होता है। इस प्रक्रिया में सक्रिय अवयवों की शिनाख्त, प्री-क्लीनिकल टेस्ट, दवा के असर की कार्य विधि को समझना, दुष्प्रभावों का अध्ययन और बड़े पैमाने पर क्लीनिकल टेस्ट करना अनिवार्य होते हैं। बीसवीं सदी के मध्याह्न तक, उच्च रक्तचाप का इलाज केवल नमक का सेवन घटाना ही था। वर्ष 1931 में कोलकाता के कविराज गणनाथ और कार्तिक चंद्र बोस ने खोजा कि सर्पगंधा के क्षार से उच्च रक्तचाप का इलाज संभव है। आगे, दिल्ली स्थित तिब्बिया कॉलेज के डॉ. सलीमुज्जमां सिद्दिकी ने इस बीमारी के उपचार के लिए पांच जड़ी बूटियों के क्षारों को अलग कर, इसका प्रयोग मेढकों और बिल्लियों पर किया था। इन खोजों को आधार बनाकर बम्बई (मुंबई) के हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. रुस्तम जाल वकील ने कुछ मरीज़ों पर प्रयोगात्मक अध्ययन किया और परिणाम ब्रिटिश मेडिकल जर्नल, 1949 में प्रकाशित किया। इस खोजपत्र ने तहलका मचा दिया और पूरी दुनिया में उच्च रक्तचाप प्रबंधन का चेहरा बदल गया। इसी तरह, 1990 के दशक में केंद्रीय दवा अनुसंधान संस्थान (सीडीआरआई) और भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान (सीएसआईआर) के संयुक्त तत्वावधान में ब्राह्मी के अर्क और आयुर्वेद में जादुई बूटी मानी जाने वाली ब्राह्मी के मिश्रण से स्मरण शक्ति बढ़ाने वाली दवा विकसित की गई थी। यह तकनीक चेन्नई की एक फर्म को हस्तांतरित की गई, जिसने 'मैमोरी प्लस' के नाम से इसे बाजार में उतारा था। इस दवा का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हाराव ने किया था और अगले प्रधानमंत्री आई. के. गुजराल ने अनुमोदन करते हुए इसे निजी इस्तेमाल में प्रभावशाली बताया था। लेकिन कुछ वर्षों बाद, सीडीआरआई ने अगली खोज में पाया कि मैमोरी प्लस में स्मरण शक्ति बढ़ाने वाला सक्रिय अवयव बेहद कम है लिहाजा उक्त कंपनी का लाइसेंस निरस्त कर दिया गया।

निस्संदेह जो दवा फार्मूले पुरातन आयुर्वेदिक किताबों में बताए गए हैं, आधुनिक समय में जब तक वे प्रभावशीलता और सर्वसम्मत सुरक्षा सोपानों पर खरे नहीं उतरते, तब तक बतौर कारगर दवा बाजार में उतारने लायक माने जाएं, यह जरूरी नहीं। इस तार्किकता से रिवायती इलाज के कुछ पक्षधरों और उनके समर्थकों को समस्या हो जाती है। हालिया उदाहरण आंध्र प्रदेश के कृष्णापटनम क्षेत्र के बी आनंदैया का है, जो स्थानीय जड़ी-बूटियों से बनाई कोविड-19 की 'जादुई दवा' हजारों लोगों को बांट रहे हैं। राज्य सरकार ने इस सप्ताह उक्त औषधि की जांच करवाई है और पाया है कि इसका कोई दुष्प्रभाव नहीं है, तथापि कोविड-19 पर कितनी असरदार है, यह अभी नहीं प्रामाणिक नहीं है। फिर भी आनंदैया को अपनी दवा बांटने की इजाजत मिली हुई है। इसी तरह का मामला पतंजलि द्वारा लाई गई 'कोरोनिल' दवा का है, जिसको स्वास्थ्य मंत्री हर्षवर्धन के हाथों जारी करवाया गया था और अन्य कई मंत्रियों ने अनुमोदन किया है। पहले पहल इसको कोविड-19 का उपचार बताकर बेचा गया लेकिन बाद में इस दावे को कमतर करते हुए इसको 'रोग प्रतिरोध क्षमता' बढ़ाने वाला बताया। ऐसे तमाम मामलों में अव्वल तो प्रभावशीलता का कोई सबूत नहीं होता या फिर संदिग्ध होता है। रामदेव और आनंदैया जैसे लोग चाहते हैं कि विज्ञान के कड़े सोपानों से गुजरे बगैर उनकी दवा और खुराक पर 'वैज्ञानिक प्रामाणिकता' की मुहर लग जाए। अब पतंजलि का अपना दवा अनुसंधान और शोध विभाग है, जो वैज्ञानिक पत्रिकाओं में अनुसंधान पत्र प्रकाशित करता रहता है। यह उपाय रामदेव के बढ़ा-चढ़ाकर किए गए दावों को किसी तरह वैज्ञानिक रूप से प्रामाणिक सिद्ध करने के मंतव्य हैं। अभी तक जो भी शोध-पत्र जारी-प्रकाशित हुए हैं, उनमें केवल विश्लेषण संबंधी और जानवरों पर किए गए शोध के बारे में जिक्र है, इनमें आयुर्वेदिक दवा की प्रभावशीलता का पुख्ता सबूत नदारद है। अधिकांश शोधपत्र उन पत्रिकाओं में छपे हैं, जिन्हें मेडिकल जगत में दोयम दर्जे का माना जाता है और मुख्यधारा के प्रकाशन भी नहीं हैं। यही वे शोधपत्र हैं, जिनका जिक्र कर रामदेव अपनी दवाएं 'विज्ञान सम्मत' होने का दावा करते हैं, लेकिन सफाई से यह बात छुपा लेते हैं कि इनमें एक भी क्लीनिकल अध्ययन और जगह-जगह किए गए क्लीनिक्ल परीक्षणों पर आधारित नहीं है।

आजकल

मौत के आंकड़ों पर पर्दा

कोरोना संक्रमण और उससे होने वाली मौतों को लेकर राज्यों की तरफ से रोजाना जारी किए जाने वाले आंकड़े काफी समय से सवालों के घेरे में रहे हैं। कुछ देशी और विदेशी समाचार माध्यमों ने अपने स्तर से कराए अध्ययनों के आधार पर बताया था कि राज्य सरकारों की तरफ से जारी किए गए मौत के आंकड़ों और वास्तविक संख्या में काफी अंतर है। खासकर बिहार के आंकड़ों को लेकर शुरू से संदेह जताया जा रहा था, मगर वहां का स्वास्थ्य विभाग अपने पक्ष पर कायम था। इसे लेकर पटना उच्च न्यायालय ने सरकार को फटकार लगाते हुए जिलावार वास्तविक आंकड़े जुटाने का निर्देश दिया था। तब सरकार ने इसके लिए जिलों में समितियां गठित की थी। उन समितियों ने अस्पतालों और श्मशानों आदि से इकट्ठा करके जो आंकड़े उपलब्ध कराए हैं, उससे जाहिर है कि सरकारी स्तर पर कोरोना से हुई मौतों की संख्या सही नहीं बताई गई। सरकारी आंकड़ों की तुलना में मौत के नए आंकड़े करीब तिहत्तर फीसद अधिक दर्ज हुए। इसके अलावा कुल संक्रमित होने वालों और इलाज के बाद ठीक होने वालों की संख्या भी छिपाई गई। हालांकि बिहार सरकार ने अपने आंकड़ों को दुरुस्त कर दिया है, पर सवाल है कि इस तरह आंकड़े छिपाने या सही ढंग से पेश न कर पाने की क्या वजह हो सकती है। इसके पीछे कुछ वजहें साफ है। बिहार सरकार शुरू से कोरोना संक्रमण से पार पाने को लेकर शिथिलता बरतती रही है। पहली लहर के दौरान भी पिछले साल जांच कराने और उपचार सुविधाएं उपलब्ध कराने को लेकर वह लंबे समय तक टालमटोल की मुद्रा में ही नजर आई थी। तब भी चौतरफा आलोचनाओं के बाद वह सक्रिय हुई थी। दूसरी लहर के दौरान वहां बड़े पैमाने पर संक्रमण फैलना शुरू हुआ, तब भी उसका रवैया पहली लहर जैसा ही था। अव्वल तो वहां स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थिति ठीक नहीं है, जिसके चलते दूर-दराज के गांवों में संक्रमण की श्रृंखला तोड़ने की दिशा में प्रभावी कदम उठाए जा सकें। फिर सरकार ने इस दिशा में कुछ बेहतर उपाय जुटाने के प्रयास भी नहीं किए। ऐसे में वहां के प्रशासन ने सबसे आसान तरीका यही समझा होगा कि संक्रमण से जुड़े तथ्यों को छिपाया जाए, जिससे कि राज्य सरकार और प्रशासन की बदनामी न होने पाए। मगर इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि सरकार कोरोना संक्रमण रोकने को लेकर शुरू से संजीदा नहीं है।

लॉकडाउन का असर: मनरेगा की जरूरत पहले से अधिक

मुद्दा

भारत डोगरा

ग्रामीण आज जब देश में लॉकडाउन के प्रभावों की चर्चा फिर से हो रही है और अनेक प्रवासी मजदूर भी शहर से गांव की ओर लौट रहे हैं, एक बार फिर ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना यानी मनरेगा का महत्व बढ़ गया है। पिछले वर्ष जब लॉकडाउन लगा था और प्रवासी मजदूरों के पलायन के दौर में सरकार ने राहत के विशेष पैकेजों की घोषणा की थी, तो उसमें मनरेगा के बजट में वृद्धि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। मौजूदा स्थिति में भी सरकार को ऐसा ही करना चाहिए।

मनरेगा में सामान्यत: कानूनी प्रावधान यह है कि मजदूरों की ओर से कार्य की मांग आने पर ही कार्य आयोजित करने की प्रक्रिया आरंभ होती है। इसमें कुछ समय लगता है। सामान्य वक्त के लिए तो यह व्यवस्था ठीक है। पर जब लोगों की आर्थिक स्थिति अधिक कमजोर है, तो प्रशासन को अपनी ओर से भी, पंचायतों के सहयोग से इस प्रक्रिया को आरंभ करने की छूट होनी चाहिए, ताकि अपेक्षाकृत कम समय में अधिक कार्य आरंभ किए जाएं। केंद्र सरकार की बड़ी जिम्मेदारी शीघ्रता से पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध करवाने की है, क्योंकि अंत में सबसे बड़ी जरूरत तो इन दिनों यही होगी कि मजदूरों के भुगतान में देरी न हो। यदि कार्य आयोजित करने की शेष सब तैयारी हो गई, लेकिन समय पर मजदूरों की मजदूरी का भुगतान भी नहीं हुआ, तब तो मूल प्रयोजन पूरा ही नहीं होता है और कई बार यही स्थिति देखी गई है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी का कानून बने तो बहुत समय बीत गया, पर अब तक इसे वैसी मान्यता नहीं मिली है, जो मिलनी चाहिए थी। उदाहरण के लिए, गारंटी शब्द का अभिप्राय ही यह है कि यदि विधिसम्मत ढंग से रोजगार नहीं मिला, तो इसके बदले में क्षतिपूर्ति या मुआवजे की राशि दी जाएगी। कानून में इसका प्रावधान भी है, (हालांकि यह कुछ कमजोर ढंग से रखा गया है) पर 95 प्रतिशत से अधिक मामलों में यह राशि नहीं दी जाती है। एनडीए सरकार के आरंभिक दौर में मनरेगा के महत्व को कम आंकने के प्रयास नजर आए, पर शीघ्र ही नजर आ गया कि कठिन दौर में तो इसका महत्व और भी बढ़ता ही जा रहा है। कोविड के दौर में तो यह और भी रेखांकित हो गया। इसके लिए बजट आवंटन बढ़ाने की मांग ने जोर पकड़ा और स्थितियां ऐसी थीं कि अन्य कटौतियों के बीच भी केंद्र सरकार को यह मांग माननी पड़ी। लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिक दीर्घकालीन कारण भी हैं, जो आगामी दिनों में मनरेगा के महत्व को बढ़ाने वाले हैं। जलवायु बदलाव के संकट को कम करने के लिए जहां कार्बन डाईऑक्साइड सहित विभिन्न ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने की मांग जोर पकड़ेगी, तो कार्बन को सोखने की क्षमता को बढ़ाना भी बहुत जरूरी है। इसके लिए वनीकरण, स्थानीय प्रजातियों के पेड़ों को बचाना, चरागाहों की रक्षा, मिट्टी के ऑर्गेनिक तत्त्व में वृद्धि- यह सब बहुत जरूरी है। इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने में मनरेगा की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। जल-संरक्षण की दृष्टि से भी मनरेगा बहुत महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। मनरेगा पूरी तरह आदर्श ढंग से अधिकांश स्थानों पर चल नहीं सका, इसके बावजूद इसने अनेक स्थानों पर जल-संरक्षण, नमी संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मुझे मनरेगा के अच्छे और बुरे, दोनों तरह के क्रियान्वयन को देश के अनेक भागों में देखने को मिला है। कुछ स्थानों पर मजदूरी देर तक न मिलने से उपजी निराशा को देखा है, तो कुछ स्थानों पर घर के पास ही मिल रही संतोषजनक मजदूरी से उपजे उत्साह को भी देखा है। मनरेगा ठीक से चले तो गांव की भलाई के कार्यों में रोजगार और मजदूरी घर के पास ही मिल जाते हैं। स्थानीय समझ और भागीदारी से गांव के अनेक विकास कार्य और पर्यावरण रक्षा के कार्य हो सकते हैं। इस तरह ग्राम स्वराज के सपने को आगे बढ़ाने में भी मनरेगा की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। गांव हरा-भरा हो जाए, चरागाहों व वृक्षों की हरियाली बढ़ जाए, तो आगे अनेक बहुत तरह के विकास कार्यों की संभावना बढ़ती है।